श्रीरमेश उपाध्याय

सत्यं शिवं सुन्दरम्

मानवीय विचारों की एक परम्परागत अपौरुषेय शृंखला होती है. अपौरुषेय इस अर्थ में कि परम्परा में आने पर विचार किसी एक व्यक्ति का नहीं रह जाता. उसमें अनेक व्यक्तियों के विचारों का सार निहित रहता है. कभी-कभी इन परम्परागत विचारों को सूत्रों में बांध लिया जाता है. ऐसे सूत्र उन विचारों का प्रतिनिधित्व तो करते ही हैं, नये विचारों की प्रेरणा भी देते रहते हैं.

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' भी एक ऐसा ही सूत्र है जिसके पीछे दार्शनिक विचारों की एक लम्बी शृंखला है और जिसमें नये-नये विचारों की कड़ियां जुड़ने की अनेक सम्भावनाएं हैं.

सूत्र के प्रथम पद 'सत्य' को पहचानने, पाने और स्वरूप निर्धारण के प्रयत्न प्राचीनकाल से होते रहे हैं. भारतीय दार्शनिकों ने ही नहीं सुकरात, प्लेटो, अरस्तु आदि विश्व के अन्य असंख्य सत्यान्वेषियों ने सत्य की व्याख्याएं की हैं और प्रयोग किये हैं. निकट अतीत में गांधी का उदाहरण सत्यार्थी के रूप में दिया जा सकता है.

कोई शब्द जितना अधिक सार्थक होता है, उतनी ही कठिन उसकी व्याख्या होती है. शब्दों का लचीलापन और उनकी व्यापकता, दो ऐसे आयाम हैं जो व्याख्या का विशाल क्षेत्र प्रदान करते हैं. यही कारण है कि सत्य की एक सीमित परिभाषा देना असम्भव है. यों, कोई परिभाषा वैसे भी स्वयं में पूर्ण नहीं होती—होनी भी नहीं चाहिए क्यों कि ऐसा होने पर चिन्तन की दिशा अवरुद्ध होने लगती है. कहने को कह सकते हैं कि सत्य एक स्थिति है, ऐसी स्थिति जिसके अस्तित्व के विषय में कोई संदेह नहीं किया जा सकता किन्तु विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने पर उसके विभिन्न रूपाकार दृष्टिगोचर हो सकते हैं. यही कारण है कि प्रत्येक युग में सत्य-सम्बन्धी मान्यताएँ बदलती रहती हैं. एक उदाहरण द्वारा इस बात को स्पष्ट कर दूं.

प्राचीन काल में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के आधार पर ईश्वर के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु असत्य या माया समझी जाती थी और नितान्त आधुनिक विचारों के लोग ठीक इसके विपरीत बात कहते हुए सुने जाते हैं. कोई व्यक्ति निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि यही अन्तिम सत्य है. सत्य को एक सूक्ष्म अनुभूति के रूप में ही जाना जा सकता है उसको किसी आकार में ढालने पर उसकी सत्यता में संदेह होने लगता है. मैं तो कहूँगा कि यह संदेह ही हमें सत्य की खोज के लिये प्रेरित किया करता है.

साहित्य में सत्य एक स्थायी मूल्य है और अनिवार्य आवश्यकता है. असत्य प्रतीत होने वाली कृतियां भी सत्य पर आधारित होती हैं. भले ही उनकी सत्यता परिवेश के अनुसार उभरकर सामने आ सके. साहित्यकार जिस दृष्टिकोण से चीजों को देखता है और ईमानदारी से उनके प्रभाव को अभिव्यक्ति देता है, वह उसका अपना सत्य है. वह सत्य बहुमत द्वारा मान्य भी हो सकता है और अमान्य भी. बहुमत द्वारा अमान्य साहित्यिक सच्चाइयों को परखते समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतिकार की सत्य के प्रति उसकी निजी पहुँच (Approach) की प्रक्रिया को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है. अन्यथा कृति और और कृतिकार के प्रति अन्याय हो जाता है.

परन्तु साहित्यिक कृति का सच होना ही उसकी पूर्णता नहीं है. केवल यथार्थ पर दृष्टि रखने वाला कृतिकार या विचारक सत्य का सही सर्जक नहीं हो सकता. कारण, कोरा सच मनुष्य को कोई दिशा दे सकता है न आनन्द. यही कारण है कि जहां सत्य है वहां शिव और सुन्दर का होना भी अनिवार्य है. 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के तीनों शब्द अन्योन्याश्रित एवं एक सहज संगीत में बंधे हैं. जहां सत्य है, वहां शिव और सौन्दर्य का होना अनिवार्य है. शिव अर्थात् कल्याणकर होने के लिये सत्य और सुन्दर होना अपेक्षित ही है और सुन्दर तो कुछ हो ही नहीं सकता जो सत्य और शिव न हो. इन तीनों शब्दों के क्रमागत रूप का भी एक निश्चित उद्देश्य है. यह क्रम तीनों की क्रमागत वशिष्टता एवं गुरुता को प्रदर्शित करता है. तीनों की श्रेष्ठता में भी सत्य श्रेष्ठतम, शिव श्रेष्ठतर एवं सुन्दर श्रेष्ठ है परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि तीनों में किसी की महत्ता कम है. तीनों की क्रमागत गुरुता स्वीकार न भी करें, किन्तु पारस्परिक सापेक्षता से तो इंकार किया ही नहीं जा सकता.

मानवता के आध्यात्मिक, भौतिक एवं काल्पनिक जगत्-रूपों में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का क्रमिक रूप देखा जाय तब भी अच्छे परिणामों पर पहुंचा जा सकता है. सत्य तो आध्यात्मिक है ही क्योंकि दर्शन के समस्त प्रश्न सत्यासत्य विवेक की जिज्ञासा लिये हुए होते हैं. 'शिव' के अन्तर्गत संसार के लिये जो कुछ हितकर हैं, उपादेय है, वह सब आ जाता है. हितकर और उपादेय चाहे वस्तु हो या कार्य तथा विचार. मानवता के कल्याण के लिये जो हितकर एवं उपादेय है, उसके निर्माण, संवर्द्धन एवं संरक्षण के समस्त प्रयत्न 'शिव' से ही प्रेरित होते हैं. और 'सुन्दरम्' मानव-कल्पना के आनन्ददायक स्वरूप का संकेत है. किसी वस्तु विशेष का अपना सौन्दर्य असौन्दर्य कुछ भी नहीं है. वस्तु को सुन्दर-असुन्दर बनाने वाला हमारा मन है, हमारी कल्पना है. अपने मानसिक सौंदर्य के कारण ही हम फूलों को हँसता देख सकते हैं, घटाओं को आँसू बहाते हुए महसूस कर सकते हैं. जिनके काले रंग और मोटे होठों को देखकर हम नाक-भौंह सिकोड़ने लगते हैं उनमें भी अफ्रीका-निवासी परम-सौन्दर्य की कल्पना करते हैं. अतः 'सुन्दरम्' हुआ मनुष्य के मानसिक जगत् का प्रतीक है.

भौतिक जगत् में हमें सभ्यताओं के विकास और ह्रास मिलते हैं. अपनी भौतिकता में मनुष्य अध्यात्म और कल्पना दोनों से आक्रांत रहता है. प्रगति के लिये संकेत मिलते हैं कल्पना से और प्रगति की दिशा निर्धारित करने के लिये अध्यात्म का अंकुश काम आता है. फिर भी जब संस्कृतियां गलत मोड़ ले लेती हैं और दर्शन एवं कल्पना दोनों विकृत होने लगते हैं, तब 'शिवं' की उपादेयता को महत्त्व देने वाली प्रवृत्ति दोनों में या दोनों में से एक में क्रांति ले आती है. उस क्रांति द्वारा 'शिवं' को सत्य और सुन्दर बनाने की प्रेरणा स्वतः ही प्राप्त हो जाती है. जब मनुष्य भौतिकता को ही सब कुछ मान लेता है और अध्यात्म एवं कल्पना से पीछा छुड़ा लेना चाहता है तो वह अवनति की ओर जाने लगता है. अतः उसे कहीं न कहीं आध्यात्मिक दर्शन की ओर झुकना ही पड़ता है. 'आत्मज्ञं हार्ययेद् भूतिकामः' में भी यही भावना परिलक्षित होती है.

आदर्शवाद और भौतिकवाद को देखते समय भौतिकवाद हमें अधिक आकर्षित करता है. साहित्यिक रचनाओं में भी हम देखते हैं कि आदर्शवादी विचार हमें उतना प्रभावित नहीं करते जितना भौतिक जगत् के नग्न यथार्थ को चित्रित करने वाले विचार करते हैं. वैसे साहित्यिक क्षेत्र में नितान्त यथार्थ अथवा कोरे आदर्श को प्रस्तुत करने वाली रचनाओं को खोज पाना असम्भव ही है क्योंकि बिल्कुल यथार्थ लगने वाला विचार भी कहीं बहुत गहरेपन में आदर्श से प्रभावित होता है और आदर्श की तो विवशता है कि उसे यथार्थ के पांवों पर खड़ा होना पड़ता है.

विश्व की राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधाराओं पर दृष्टिपात करने पर लगता है कि 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को लेकर न चलने वाली धाराएं असमय ही उपेक्षा के मरुस्थल में खो गयीं. जबतक उनके प्रवर्तक या कुछ दृढ़ अनुयायी रहे तब तक वे अपने विचारों को सत्य मानकर सुदृढ़ आस्था के स्तम्भों पर उनका भार ढोते रहे किन्तु सत्य, शिव और सुन्दर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सामंजस्य से उद्भुत विचारों के एक ही धक्के से उनकी अर्द्ध सत्य मान्यताओं के प्रासाद भहराकर गिर पड़े.

सामंजस्य ! हां, सत्य शिव सुन्दर का सामंजस्य अनिवार्य है. इसके अभाव में संसार में स्थित कोई भी अस्तित्व अपूर्ण है. वस्तु, कर्म और विचार सभी में तीनों के सामंजस्य से श्रेष्ठता आती है.

सुन्दरम् क्या है ?

झील के नीले जल में तट के वृक्षों की परछाइयां, परस्पर टकरा कर टूटती हुई लहरों में चमकती चांदनी, घाट पर पड़े हुए पत्थरों में समय का संगीत, दूर नीलाकाश से आता हुआ कोई अज्ञात आह्वान, भयंकर भूडोल में भी लय की अनुभूति, खुली धूप में स्वतन्त्रता और अंधकार में गुलामी का एहसास—यह सब क्या है ?

आपके घर में एक गुलाब का पौधा है. उसके फूल और कलियों को देख-देख कर आप प्रसन्न होते हैं. एकान्त के उदास क्षणों में आपका ध्यान अनायास ही कुम्हलाई पंखुरियों पर जा पड़ता है और आप उस गुलाब के पौधे से आत्मीयता अनुभव करने लगते हैं. कांटा चुभता है तो जीवन के लिये शिक्षा ग्रहण करते हैं लेकिन जब आप अपने गमले में सूखते गुलाब के पौधे को बचाने के लिये सहानुभूति से प्रेरित होकर किसी वनस्पति-शास्त्री (Botanist) के पास जाते हैं तो आपकी सहानुभूति उसकी बातें सुनकर एक शुष्क ज्ञान में परिणत हो जाती है. घर लौट कर आप देखते हैं पौधा मर चुका है. उखाड़ कर फेंकते तनिक भी दुःख नहीं होता. नया पौधा लगा लेंगे. ऐसा क्यों होता है ?

अनुसंधान का उद्देश्य प्रकृति में मनुष्य का प्रवेश है. पृथ्वी के आर-पार देख सकना, सितारों को छू लेना, पक्षियों और पशुओं की बोलियों को समझ लेना, समय की यति-गति को पहचान लेना, क्षण का अश्रुत संगीत सुन सकना और आकाश-पाताल को अपनी सहानुभूति में समेट कर एक सुन्दर स्नेहमय संसार की रचना, विज्ञान का उद्देश्य है. किन्तु आज विज्ञान उस पथ को भूल गया है. सत्य और शिव का निर्वाह तो वह जैसे तैसे कर लेता है किन्तु सौन्दर्य को अस्पृश्य मान कर छोड़ देता है. यहीं आकर वह भटक जाता है और नीरस कारण-परिणामों को सूचित करने वाली तालिका मात्र बन जाता है. यही कारण है कि सौन्दर्य के अभाव में सहानुभूति-शून्य होकर वह विध्वसंक होने लगता है.

सौन्दर्य तो एक चेतना है जो स्वयं उद्भुत होती है. मनुष्य में, उसके रूप और आकृति में, और उसकी शक्ति के प्रयोगों में हम अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण द्वारा कहीं न कहीं एक ऐसी झलक पा लेते हैं जो हमें अभिभूत कर जाती है. यह चेतना न पुस्तकों से मिलती है न शिक्षकों से. इस चेतना के अभाव में मनुष्य जीवन का आनन्द खो देता है.

आज समाज में व्यक्ति का मूल्यांकन कैसे होता है ? अच्छा पति या अच्छी पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र या सुशीला पुत्री, अच्छा नागरिक, धनवान् व्यक्ति या सम्मानित महिला परन्तु यह मूल्यांकन सही नहीं है. यह तो ऊपरी वेश भूषा का मूल्यांकन है, मनुष्य का नहीं. मनुष्य का मूल्यांकन करने के लिये उसका आंतरिक सौन्दर्य देखना पड़ता है, उसकी आत्मा जाना पड़ता है, स्वयं अपने हृदय में सौंदर्य से सहानुभूति की भावना जागृत करनी होती है. सौंदर्य से सहानुभूति रखने वाला मन संवेदनशील और भावुक होता है. सौन्दर्य के किसी भी रूप को देखकर उसकी हृत्तंत्री पर स्पन्नकम्पन होते हैं. कम्पन, जड़ता, उल्लास, हर्षातिरेक, अधीरता, संवेदना आदि का उत्स सौन्दर्य ही है.

अतः सत्य और शिव सौन्दर्य के बिना फीके हैं. सौन्दर्य हमें अस्तित्त्व के उद्गम का चिन्तन करने के लिये प्रेरित करता है. प्रकृति के गोपन का उद्घोष सुन्दरम् के द्वारा होता है. सौन्दर्य को पाकर जीवन का असंतोष मिटता है. विश्रांति का अनुभव होता है किन्तु यह सन्तोष और विश्रान्ति, जीवन को निष्क्रिय नहीं बनाते, आगे बढ़ने का उल्लास और प्रेरणा प्रदान करते हैं. प्रेम का उद्भव भी सौन्दर्य से ही होता है.

राल्फ वल्डो एमर्सन ने लिखा हैं :

In the true mythology love is an immortal child and beauty leads him as guide nor can

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

we express a deeper sense than when we say, Beauty is the pilot of the young Soul.

(सच्ची पौराणिकता में प्रेम एक अमर शिशु है और सौन्दर्य उसका पथ-प्रदर्शक है. जब हम कहते हैं कि सौन्दर्य शिशु आत्मा का चालक है, तो इससे अधिक गहन अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर सकते.)

प्रेम मानव मात्र की सीमाओं से परे सम्पूर्ण विश्व पर छाया हुआ है. एकता एवं सहकार की भावनाएं प्रेम से उत्पन्न होती हैं और प्रेम-पाश फेंकने वाले अदृश्य हाथ सौन्दर्य के होते हैं. हमें भद्दी और कुरूप वस्तुओं से भी स्नेह क्यों हो जाता है क्योंकि हम उस वस्तु की सतही आकृति के नीचे उसके अंतराल में झांकते हैं, जहां सौन्दर्य की विपुल सृष्टि हमारा आवाहन् करती है. सोक्रेटीज या कौटिल्य की कुरूपता उनके आत्म सौन्दर्य को ढंक नहीं सकी. गांधी सत्य के पुजारी और मानवता के हितकारी होकर भी राम की मनोहर मूर्ति के उपासक थे क्योंकि राम सौन्दर्य के प्रतीक भी थे—अपनी सम्पूर्ण मर्यादाओं के साथ. कौटिल्य को युद्ध की वीभत्सता में रण-देवी के तेजस्वी और सुन्दर स्वरूप के दर्शन होते थे क्योंकि उनके अन्तर में सौन्दर्य की व्यापक चेतना थी. जो लोग कौटिल्य को नीरस-राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री मानते हैं वे 'मुद्रा राक्षस' में उनके हृदय की सौन्दर्य प्रियता के दर्शन करके अपनी भूल सुधार सकते हैं.

'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के विस्तृत विवेचन में अनेक ग्रंथ लिखे जा सकते हैं—लिखे भी जा चुके हैं. आवश्यकता है इन्हें अपने जीवन में समन्वित रूप से उतार लेने की. मन, वचन, कर्म से इन्हें अपने आचरण में उतार कर मानवता की सेवा के प्रयत्नों की सुदीर्घ परम्परा में उज्ज्वल कड़ियां जोड़ते चलना मनुष्य का लक्ष्य भी है, और कर्तव्य भी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org